P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-4* December- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आदिवासी शिक्षा साहित्य, सभ्यता और संस्कृति

सविता अधाना
सह प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय,
मीरपुर, रेवाडी

सारांश

संसार के प्रत्येक कोने में कुछ ऐसे मानव समुदाय आज भी निवास करते है जो आधुनिक समाज की दौड से काफी पीछे रहकर अपना अस्तित्व बनाए हुए है। ऐसे पिछले व उपेक्षित समाज को अपनी भौगोलिक स्थिति और उनके प्रतिद्वन्द्वी समुदायों के राजनैतिक पुराग्रह के कारण उनके विकास न होने का दण्ड सहना पड़ा। इन्हें ही 'ड्राइव' या आदिवासी कहा जाता है।

मुख्य शब्द : आदिवासी लोग शब्द की अवधारणा शिक्षा का प्रचार–प्रसार, साहित्य सृजन, आदिवासी संस्कृति व सभ्यता आदि।

प्रस्तावना

हमारी सभ्यता और संस्कृति को आज हम जिस रूप में देखते है वह एक दिन में नहीं बनी है। सभ्यता और संस्कृति हमारे पूर्वजों की भांति है जो आज हमें प्राप्त होती है। यह पीढी दर पीढी आगे आने वाले मानव समुदाय को भी प्राप्त होती रहेगी। हाँ समय व सामाजिक उतार–चढाव का प्रभाव तो इस पर अवष्यक पढेगा। लेकिन यह समाप्त नहीं होगा। भारतीय संस्कृति और परम्पराएँ प्राचीन काल से ही सारे संसार को प्रभावित करती आई है क्योंकि इसमें इतने अधिक विविध रंग है जो एक बगीचे में खिले सुगन्धित रंग–बिरंगे फूले के समान प्रतीत होता है। हमारी संस्कृति लोक संस्कृति है जो यहाँ पर रहने वाली अनेक जातियों धर्मो व मतों मानने वालों की रीति रिवाज व परम्पराओं का एक विषाल रूप है। आदिवासी समाज को भी हमारी संस्कृति को अमूल्य योगदान है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तावित अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य निम्नवत है–

1. आदिवासी शब्द की परिभाषा व उत्पत्ति से पाठक को अवगत कराना।
2. आदिवासी लोगों के जीवन से पाठक को अवगत कराना।
3. आदिवासी लोगों की शिक्षा, साहित्य से पाठक को अवगत कराना।
4. लोक संस्कृति के मूल तत्वों से परिचित कराना।

उपकल्पना

प्रस्तावित शोध विशय में यह परिकल्पना ली गई है कि भारत की उपेक्षित व पिछडी जातियों में से एक आदिवासी जनजातियों की वर्तमान स्थिति की उद्घाटन करना आदि।

शोध प्रविधि

प्रस्तावित शोध पत्र की अध्ययन विधि– मुख्य रूप से व्याख्यात्मक व विवेचनात्मक है। जो सरकारी गैर सरकारी स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं व पुस्तकों, शोध पत्रों, जर्नल्स समाचार पत्र एवं इंटरनेट आदि पर आश्रय लिया गया है।

साहित्यावलोकन

आदिवासी समाज एक ऐसा समाज है जो पृथ्वी पर मानव जीवन के प्रारम्भिक रहन–सहन को अपनाते हुए जंगलों, पहाडों और प्रकृति के बहुत निकट रहकर प्राकृतिक न्याय पर कार्य करने वाला प्रकृति पूजक समाज है। आज इन्हें सामान्यतः ड्राइब या आदिवासी कहा जाता है ये ऐसे ही पिछड़े समुदाय है, जो चाहे दक्षिण अमेरिका के 'रेड इंडियन' हो, ऑस्ट्रेलिया के 'एस्किमों' हो, दक्षिण अफ्रीका के 'अश्वेत' हो या भारत के आदिवासी हो।'' (आदिवासी समाज साहित्य और राजनीति पृ0/15 केदार प्रसाद मीणा अनुज्ञा बुक्स दिल्ली।)[1]

आदिवासी समाज भारतीय संस्कृति और सभ्यता मैं इतना रचा बसा है कि पता ही नहीं चल पाता कि भारतीय संस्कृति में आदिवासी रंग कहा तक समाए हुए है। भारत में आदिवासी समाज अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग आदिवासी प्रजातियों में पाये जाते है जैसे झारखण्ड में सबसे ज्यादा भोला, संथाल, आदि पांच आदिवासी जातियां पाई जाती है। भारत में राजस्थान मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र छत्तीसगढ आन्ध्रप्रदेश आदि उत्तरोत्तर राज्यों में

आदिवासी जातियाँ अल्प मात्रा में है तो देश के पूर्वोत्तर राज्यों में ये अधिकांश रूप में पाए जाते हैं। आज के आधुनिक युग में हम अपने आप को बहुत सभ्य, संस्कारी व पढ़े–लिखे होने के कारण गर्व करते हैं लेकिन हमारी ये जातियाँ आज भी पिछड़ी, उपेक्षित व अनेक समस्याओं से जूझ रही है। औद्योगिकीकरण, ग्लोबलाइजेशन के इस युग में भी आज भी ये आदिवासी ही हैं। जो इस पिछड़ेपन की मार को सह रहे हैं। आदिवासी शब्द दो षब्दों से मिलकर बना है आदि+वासी, इसका अर्थ है मूल+निवासी अर्थात् किसी भी स्थान पर सबसे पहले रहने वाले वहाँ के मूल निवासी ही आदिवासी कहलाते हैं। आदिवासियों को जंगली, बर्बर, बनवासी, भूमिपुत्र लंगोटिया और भारतीय संविधान में उन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में सम्बोधित किया जाता है।

आदिवासी कौन? के प्रष्न के उत्तर में आज यही परिभाषा उचित लगती है कि ''विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परम्पराओं से सजे और सदियों से जंगलों, पहाड़ों में जीवनयापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखने वाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है।

गोंड, भील, करेली आदि आदिवासी जनजातियों के आर्यपूर्व निवासी के बारे में महात्मा ज्योतिबा फूले जी ने मार्मिक वचन कहे हैं। वे लिखते हैं–

''गोंड, भील क्षेत्री ये पूर्वस्वामी
पीछे आए वहीं इरानी
षूर, भील मछुआरे मारे गए षरों में
ये गए हकाले जंगलों गिरिवनों मे।''

आदिवासी कौन पृ0/27 सम्पादक रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।[2]

आदिवासी शिक्षा

हमारे भारत देश में चारों ओर शिक्षा में प्रचार–प्रसार पर लाखों–करोड़ों रूपये खर्च किए जा रहे हैं ताकि देश साक्षर हो और विकास के पथ पर और अधिक अग्रसर हो। लेकिन हमारे देश में आज भी ये सुविधाएँ हमारे आदिवासी समाज के पास उस रूप में नहीं पहुँच पा रही जिस रूप में उसकी घोषणाएँ सरकार बराबर करती रहती है। तो ऐसे में क्या कारण है जो आदिवासी लोगों को मिलने वाली सुविधाएँ केवल दिखावा भर लगती हैं। वैसेतो हमारी सरकारें व संविधान ने अनुच्छेद 342 के अधीन के अधीन अनुसूचित जनजातियों के तौर पर निर्दिष्ट किया है।

''भारत के लोग अधिकतर अनुसूचित जनजातियों (एस.टी.) को आदिवासी कहते हैं और इस रिपोर्ट में इन दोनों षब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है। संस्कृत में आदिवासी शब्द का अर्थ है, किसी क्षेत्र के मूल निवासी जो आदिकाल से किसी स्थान विशेष में रहते चले आ रहे हैं। माना जाता है कि आदिवासी भारतीय प्रायद्वीप के सबसे प्राचीन बाशिंदे या मूल निवासी हैं।''

(वहीं, पृ0/29)[3]

आदिवासी लोग आज भी अधिकांशतः निरक्षर हैं। यह बड़ी विडम्बना है कि वरन् तो इनके पास सुविधाएँ नहीं पहुँच पाती वहीं दूसरी और कुछ आदिवासी पढ़े–लिखे लोग अपने लोगों को ना तो जागरूक करने का प्रयत्न करते हैं न स्वयं ही कोई उनकी भलाई के लिए प्रयास करते हैं। पढ़े–लिखे आदिवासी नेता आदि भी स्वयं ही इनके विकास में केवल कुछ वोटों के लालच में बाधा बन जाते हैं। ऐसे में आदिवासी समाज जहाँ था वहीं खड़ा हुआ अपने को पात है यथा–

'अगर श्रमिक अपने श्रम के स्वामी नहीं बनेंगे तो सभी संरचनात्मक सुधार अप्रभावी रहेंगे.....किसी प्रकार से श्रम की खरीद या बिक्री एक प्रकार की गुलामी ही कहलाएगी।'

(पेडागौजी ऑफ द आप्रेस्ड, पृ0/113, आदिवासी समाज और शिक्षा/पृ0/94 रामषरण जोशी ग्रंथ शिल्पी दिल्ली)[4]

''आज अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों के लिए नकली आँसू बहाने का फैशन भी चल रहा है। लेकिन उपयुक्त अवसर आने पर अवधारणा और व्यवहार में भारी अंतर पाया जाता है।'' (वहीं प्रस्तावना पृ0/3)[5]

आदिवासी साहित्य

आदिवासी लोग अपने समाज के अस्तित्व को बचाने के लिए व अपने रीति रिवाजों को आज भी सहेजने के कारण आदर के पात्र हैं। समय, संसार, समाज, नई औद्योगीकरण, ग्लोबलाइजेशन, फैशन आदि सभी ने आदिवासी समाज को क्षति पहुँचाने का काम किया है। यह समाज अपनी परम्पराओं से इतना अधिक लगाव रखता है कि हर परिवर्तन से उन्हें भय लगता है। आदिवासी भी अपनी पीड़ा से संसार को अवगत कराना चाहते हैं। इसीलिए उनके साहित्य का जन्म हुआ। ''आदिवासी चेतना का लेखन जहाँ एक तरफ अपनी पीड़ा खुद व्यक्त करने, अपने समाधान खुद ढूंढने की चेश्टा करता है वहीं प्रस्थापितों (तथाकथित मुख्यधारा के लोगों) द्वारा उन्हें एक शडयंत्र के तहत सभ्यता से बाहर रखने का भी कराता हैं आदिवासी लेखन की उभरती चेतना का सबसे सटीक और सही चित्रण हमें बाहरू सोनवर्ण की स्टेज नामक कविता में मिलता है–

हम स्टेज पर गए ही नहीं
जो हमारे नाम पर बनाई गई थी,
हमें बुलाया भी नहीं गया
उंगली के इशारे से।

(आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना पृ0/15 रमणिका गुप्ता सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली)[6]

आदिवासी साहित्य ने इस समाज के सभी पक्षों को हमारे सामने रखा। चाहे वह उनका दर्द व पीड़ा हो, चाहे पिछड़े होने का अभिशाप हो, चाहे शहरीकरण के कारण उजड़ते उनके कबीले, जंगल व प्रकृति हो। आदिवासी साहित्य अपने संगठन की वजह से पिछले पांच हजार वर्शों से जिंदा है। आदिवासी समाज आज भी अपने मूल्यों पर जीता है। वह बाहरी तड़क–भड़क पर न तो मोहित होता है न ही उसे स्वीकार करना चाहता है। आज आदिवासी समाज ने भी कलम थाम ली है और अपनी अस्मिता को पहचान कर लिखने लगे हैं–

''क्या कर लेगी उनका बंदूक और गोलियाँ लांघते
ही देहरी हजारों कहानियाँ

नस–नस हो गई कमान सब लहू, तीर..... देखना बाकी है कलम को तीर होने दो।। (वहीं, पृ0/20)[7]

आदिवासी समाज किसी भी तरह कमजोर नहीं था। वह अन्याय व अत्याचार का सामना करना जानता है। यह अत्याचार चाहे आर्यों ने किया, चाहे अंग्रेजों ने, चाहे आज की सरकारों ने। आदिवासी समाज बहादुर है, वह प्रकृति का पूजक व उससे प्रेम करने वाला है। अपने पर हुए अत्याचार को उसने तलवार व कलम दोनों से डटकर सामना किया। चाहे अंग्रेजों के समय हुआ संथाल विद्रोह हो, चाहे झारखंड राज्य आन्दोलन, नागालैण्ड हो या असम, मणिपुर हो या अरूणाचल प्रदेश या त्रिपुरा अस्मिता का आन्दोलन। उनको व उनके साहित्य को तराषता रहा। बोडो आन्दोलन ने बोड़ो साहित्य को समृद्ध किया। सभी विधाओं में उनका लेखन आन्दोलन के बल पर पनपा।

असम के कवि नेताई राभा अपनी भाषा की बजाय गैर–राभा या गैर–वोडो भाषा–भाषियों की बोली बोलने वालों के प्रति रोश प्रकट करते हैं। जब वे कहते हैं–

''लेमा बोलने के प्रयास में
तुमने खो दी अपनी जबान–अपनी बोली
हमारी जबान भी किसी कदर कम नहीं है
मिठास में फिर क्यों करे हम दूसरों का
अनुसरण? (वहीं, पृ0/25)[8]

आदिवासी सभ्यता और संस्कृति

मनुष्य संस्कृति का जन्मदाता एवं संरक्षक है। मनुष्य के बिना संस्कृति के निर्माण की कल्पना अधूरी है। संस्कृति की परिभाषा देते हुए लारेंस लोबले ने कहा था, ''उन चीजों के उपयोग जिन्हें संसार सुन्दर मानने को सहमत है, उस ज्ञान में अभिरूचि जिसे मनुष्य जाति ने अमूल्य पाया है, उन सिद्धान्तों के ग्रहण करने की क्षमता जिन्हें प्रजाति ने सत्य रूप में स्वीकार कर लिया है।'' (आदिवासी लोक संस्कृति, पृ0/1 डॉ0 कला जोशी राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)[9]

हमारी संस्कृति में आदिवासी संस्कृति का बहुत योगदान है। आदिवासी जातियाँ जैसे– भील, संथाल, सहटिया, मुंडा, खड़िया आदि की अपनी–अपनी बहुत ही समृद्ध और प्राचीन संस्कृतियाँ हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के चारों ओर आदिवासी परम्पराएँ और प्रथाएँ छाई हुई हैं जैसे– गोदना परम्परा, ग्रामीण क्षेत्र में चटनी बनाने का सिलबट्टा, तीज त्यौहार पर रंगोली बनाना, भित्ति चित्र, फुलकारी, चित्रकारी, पारम्परिक नृत्य, विवाह के समय गाए जाने वाले लोक गीत, पक्की मिट्टी (टेराकोटा) के बर्तन आदि कितनी ही धरोहरें हमें आदिवासी समाज से प्राप्त हुई हैं। आदिवासी समाज अनेक जातियों व कबीलों में पाया जाता है जैसे– भारत में झाबुआ मध्य प्रदेश का सबसे बड़ा आदिवासी जिला है जहाँ पर भील बसे हैं। भील भारत का तीसरा सबसे बड़ा आदिम समाज है। इतिहासकार राबर्ट शेकर के अनुसार महाभारत युग में भील क्षेत्र गंगा नदी से लेकर हिमालय की पश्चिमी सीमा पर होता हुआ वर्तमान में हावड़ी सीमा के उत्तरी छोर तक फैला हुआ था। संस्कृत साहित्य में इसी विराट प्रक्षेत्र को निशाद देश कहा गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा में इसकी राजधानी भलीगाँव–भील का उल्लेख किया है। (वहीं, पृ0/13)[10]

लोक संस्कृति, लोक कला और लोक संगीत की दृष्टि से भी भील जाति अत्यधिक समृद्ध है। ढोल, मांदल, कुण्डी और कांसे की थाली उनके पारम्परित वाद्य उपकरण हैं। आदिवासियों के लोक संसकार हिचू समाज एवं धर्म के सतत् सामीप्य ने भील समाज को संस्कार सम्पन्न बनाया। झाबुआ आदिवाासी समूहगत एवं असमूही संस्कारों का अपने तरीके से पालन करते हैं।

भीलों में शिशुओं के नामकरण का आधार

दिन के आधार पर	लड़के का नाम	लड़की का नाम
रविवार/वीरवार/ सोमवार	दीतिया/ सोमला	दीतूडी (दीतू)/ सोमली
त्यौहार के आधार पर		
दीवाली/होली	दीपू/गलिया	दीपा/गली
शारीरिक या अन्य विशेषता के आधार पर		
जन्म से बीमार जन्म से दुबला ज्यादा रोने वाला	सड़िया केकड़िया रोतड़िया	सड़ी केकड़ी रोतड़ी

(वहीं, पृ0/72)[11]

निष्कर्ष

अतः हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते है कि आदिवासी समाज हमारे भारत की मिट्टी से बना ऐसा समाज है जो आज भी अपने बनाए सिद्धान्तों और प्रकृति के बनाए नियमों में बंधा हुआ है। यह वह समाज है जो अपनी पारम्परिक वेशभूषा, रहन–सहन, रीति–रिवाज और जीवन शैली से हमें प्राचीन मान्यताओं का दर्पण दिखाता है। आप लोग अपने को बहुत सभ्य समझते है और इन्हें जंगली व वनवासी कह कर पुकारते है। लेकिन वह यह नहीं जानते है कि अपनी परम्पराओं और नियमों की जड से जुड़े रहने के कारण शायद ये सभी समय से पिछडे गए है लेकिन हमें यह भूलना चाहिए कि यही आदिवासी, हमारी सभ्यता व संस्कृति को पोषित करने वाले है। हमें इन्हें मुख्यधारा में मानना चाहिए और इनके उत्थान और शिक्षा आदि सभी मूलभूत सुविधाओं को प्राप्त करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति पृ0/15 केदार प्रसाद मीणा अनुज्ञा बुक्स (प्रथम संस्करण 2014)*
2. *आदिवासी कौन पृ0/27 सम्पादक रमणिका गुप्ता राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली (तीसरी आवृति:2014)*
3. *वही पृ0/29 तीसरी आवृति/पृ0 94*
4. *आदिवासी समाज और शिक्षा/पृ0 94 रामशरण जोशी ग्रंथ शिल्पी दिल्ली) प्रथम हिन्दी संस्करण (1996)*
5. *वही प्रस्तावना पृष्ट/3)*
6. *आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना पृ0/15 रमणिका गुप्ता सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली (संस्करणः 2014)*
7. *वही पृ0/20 (संस्करणः 2014)*
8. *वही पृ0/25 (संस्करणः 2014)*
9. *आदिवासी लोक संस्कृति पृ0/1 डॉ0 कला जोशी राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली (2014)*
10. *वही पृ0/13 पहला संस्करण (2014)*
11. *वही पृ0/72 पहला संस्करण (2014)*